SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

सावरकर एवं दीनदयाल के सामाजिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

प्रतिभा चौरसिया, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत
सुधा गुप्ता, (Ph.D.), राजनीति विज्ञान विभाग
महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Authors

प्रतिभा चौरसिया, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत
सुधा गुप्ता, (Ph.D.), राजनीति विज्ञान विभाग
महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय,
ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/01/2022
Revised on : -----
Accepted on : 25/01/2022
Plagiarism : 01% on 19/01/2022

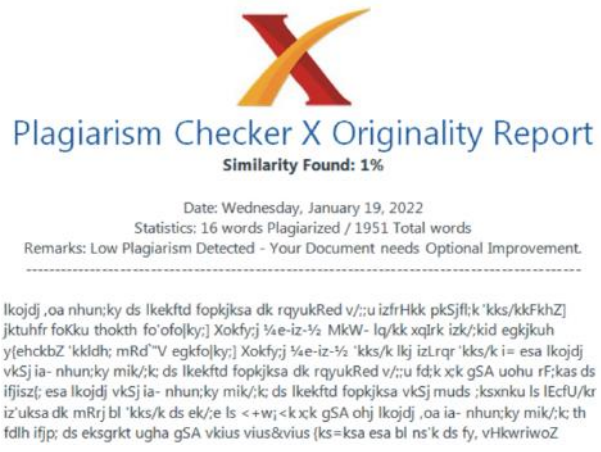
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Wednesday, January 19, 2022
Statistics: 16 words Plagiarized / 1951 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

lkojdj ,oa nhun;ky ds lkekftd fopkjksa dk rqyukRed v/;;u izfrHkk pkSjfl;k 'kks/kkFkhZ] jktuhfr foKku thokth fo'ofo|ky;] Xokfy;j ¼e-iz-½ MkW- lq/kk xqIrk izk/;kid egkjkuh y{ehckbZ 'kkldh; mRd"V egkfo|ky;] Xokfy;j ¼e-iz-½ 'kks/k lkj izLrqr 'kks/k i= esa lkojdj vkSj ia- nhun;ky mik/;k; ds lkekftd fopkjksa dk rqyukRed v/;;u fd;k x;k gSA uohu rF;kas ds ifjisz[; esa lkojdj vkSj ia- nhun;ky mik/;k; ds lkekftd fopkjksa vkSj muds ;ksxnku ls lEcfU/kr iz'uksa dk mRrj bl 'kks/k ds ek/;e ls <+w;<k x;k gSA ohj lkojdj ,oa ia- nhun;ky mik/;k; th fdlh ifjp; ds eksgrkt ugha gSA vkius vius&vius {ks=ksa esa bl ns'k ds fy, vHkwriwoZ

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र में सावरकर और पं. दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। नवीन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में सावरकर और पं. दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक विचारों और उनके योगदान से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर इस शोध के माध्यम से ढूँढा गया है। वीर सावरकर एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय जी किसी परिचय के मोहताज नहीं है। आपने अपने–अपने क्षेत्रों में इस देश के लिए अभूतपूर्व योगदान दिया है, चाहें वह राजनैतिक हो या शिक्षा के क्षेत्र में। दोनों महान विभूतियों पर भारत देश गर्व करता है। ये दोनों ही इस देश के वे आधार स्तंभ रहे हैं जो अग्नि में जलकर कुंदन बने और देशवासियों को अपने विचारों से देशप्रेम, अखण्डता एवं परस्पर स्नेह, सौहार्द्र के लिए सदैव प्रेरित किया। आप दोनों ही विभूतियों ने अपना सर्वस्व देश पर न्यौछावर किया एवं देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया।

मुख्य शब्द

सावरकर एवं दीनदयाल, सामाजिक विचार.

सावरकर समाज सुधारकों के महान समर्थक थे और उन्होंने हिन्दुओं से विज्ञान और तर्क पर आधारित आधुनिक प्रथाओं को अपनाने के लिए कहा तथा उन धार्मिक अंधविश्वासों और रीति–रिवाजों को छोड़ने के लिए कहा जो सामाजिक प्रगति में बाधा बनकर खड़े हुए थे। उनका मानना था कि धर्म ग्रंथ मानव–निर्मित हैं और तर्क के आधार पर उनकी जांच होनी चाहिए। धार्मिक सत्ता में अंध आस्था के कारण, हिन्दू अंधविश्वासी, भाग्यवादी और सहज विश्वासी हो गए थे। इसने अधिक सीखने की उनकी इच्छा को कमजोर कर दिया था।

उन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपेक्षा कर दी थी।

सावरकर जाति व्यवस्था और धार्मिक ग्रंथों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति के कट्टर आलोचक थे। वे चाहते थे कि सभी जाति वर्ग के लोग सब कार्य कर सकते हैं। वे छुआछूत के भी घोर विरोधी रहे हैं, वे कहते थे कि यदि किसी बीमारी की वजह से एक–दूसरे को छूने से बीमारी फैलती है तो उसका स्पर्श वर्जित होना चाहिए न कि जाति के आधार पर छुआछूत जैसी प्रथायें पनपनी चाहिए।

सावरकर जी के अनुसार–हमारे देश और समाज के माथे पर एक कलंक है– अस्पृश्यता। हिन्दू समाज के, धर्म के, राष्ट्र के करोड़ों हिन्दू बन्धु इससे अभिशप्त हैं। जब तक हम ऐसे बने हुए हैं, तब तक हमारे शत्रु हमें परस्पर लड़वाकर, विभाजित करके सफल होते रहेंगे। इस घातक बुराई को हमें त्यागना ही होगा।

वे कहते हैं कि–पतितों को ईश्वर के दर्शन उपलब्ध हों, क्योंकि ईश्वर पतित पावन जो है। यही तो हमारे शास्त्रों का सार है। भगवद दर्शन करने की अछूतों की माँग जिस व्यक्ति को बहुत बड़ी दिखाई देती है, वास्तव में वह व्यक्ति स्वयं अछूत है और पतित भी, भले ही उसे चारों वेद कंठस्थ क्यों न हों।[1]

भारत में हम हिन्दुत्व की दो परम्पराओं को देख सकते हैं, पहली परम्परा का नेतृत्व वी.डी. सावरकर ने किया और दूसरी परम्परा का नेतृत्व एम.एस. गोलवरकर ने किया। यद्यपि दोनों ही परम्पराओं ने हिन्दुत्व की विचारधाराओं के प्रति निष्ठा प्रदर्षित की, परन्तु उनके आग्रह और तरीकों में अन्तर था।[2]

सावरकर जाति व्यवस्था के आलोचक थे। उनका मानना था कि 'चर्तुवर्ण' और जाति व्यवस्था हिन्दू समाज के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है। चर्तुवर्ण किसी वैज्ञानिक कसौटी पर आधारित नहीं है बल्कि यह धर्मग्रंथों और पुराने विश्वासों का परिणाम है। इसने छुआछूत की अमानवीय प्रथा को जन्म दिया है जाति ने असमानता को बढ़ावा दिया, हिन्दू समाज को अनेक खंडों में विभाजित किया और हिन्दुओं के बीच शत्रुता और घृणा के बीज बोए। इसलिए हिन्दुओं में अनेक विकृतियां उत्पन्न हो गईं जिन्होंने उन्हें बेड़ियों में जकड़ रखा है और ये बेड़ियां शुद्धता और अशुद्धता पर आधारित थीं। हिन्दुओं ने इन गलत रीति–रिवाजों के कारण महिलाओं को दास बना रखा है।[3]

दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। इसके आधार पर वह राष्ट्रभाव को समझने का प्रयास करते हैं, समस्याओं पर विचार करते हैं, उनका समाधान निकालते हैं। यह तथ्य ही भारत के अनुकूल प्रमाणित होता है। ऐसे में पहली बात यह समझनी होगी कि अन्य विचारों के भांति दीनदयाल उपाध्याय ने कोई वाद नहीं बनाया।

एक समय उपाध्याय जी 'समाजवाद' के समर्थक थे। उसके बाद उनके द्वारा 'समाजवाद' शब्द का उपयोग किए बिना समतावादी आर्थिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन तथा आर्थिक क्षेत्र में राज्याधिकार का विरोध चलता रहा। यह काल सन् 1954–56 तक का है। सन् 1957 के जनसंघ–घोषणापत्र में पहली बार 'समाजवाद' की, राज्य के हाथों में शक्ति के केंद्रीकरण के संदर्भ में, आलोचना की गई। सन् 1958 के जनसंघ के सातवें बंगलौर अधिवेशन में 'समाजवाद' तथा 'पूँजीवाद' पर तीव्र प्रहार किए गए; लेकिन उपाध्याय का संपूर्ण आर्थिक विवेचन समाजपरक एवं समतावादी है। वे संपत्ति पर व्यक्ति का समाज निरपेक्ष अधिकार स्वीकार नहीं करते। मुनाफावादी कर्मप्रेरणा तथा यांत्रिक उद्योगवाद के भी वे प्रबल विरोधी हैं। 'समाजवाद' का भी वे तीखा विरोध करते हैं।[4]

सामाजिक क्षेत्र में दीनदयाल उपाध्याय का योगदान मुख्यतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता के नाते ही रहा है। संघ के अनेक कार्यकर्ता समाज के विविध क्षेत्रों में भेजे गए थे। उसी क्रम में दीनदयाल उपाध्याय को राजनीतिक क्षेत्र का दायित्व मिला था; लेकिन उन्होंने कभी भी अपने आप पर राजनीति को हावी नहीं होने दिया। इसके अलावा वे लेखन के माध्यम से भी अपनी सामाजिक भूमिका अदा करते थे, वे पत्रकार भी थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि समाजवादी यह समझते हैं कि समाज का राजनैतिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन उसके उत्पादन के स्रोतों के द्वारा ही ढलता है, अतः समाजवादी व्यवस्था में राज्य का, आर्थिक क्षेत्र के साथ–साथ राजनैतिक एवं अन्य क्षेत्रों में भी, पूर्ण वर्चस्व रहना आवश्यक है। इससे एक ऐसी स्थिति

पैदा होगी जब उन लोगों के विरुद्ध जो शासन में हैं लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करना संभवनीय नहीं होगा। समाजवादी बंदूक की गोली का पहला शिकार निश्चित रूप से कोई लोकतंत्रवादी ही होगा। समाजवाद और लोकतंत्र दोनों साथ–साथ नहीं चल सकते, शेर–बकरी का एक ही घाट पर पानी पी सकना असंभव है। मानव को सुखी व संपन्न बनाने के प्रयास में समाजवाद एवं लोकतंत्र, दोनों ने ही उसको एक वीभत्स स्वरूप दे डाला है।[5]

जातिगत भेदभाव तो सहिष्णुता की कमी, व्यावसायिक श्रम विभाजन की परिस्थितियों में परिवर्तन के बाद भी चलते रहने पर वे रूढ़ियाँ बन जाती हैं। उपाध्याय जी की भारतीय परंपरा और संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा थी, इन बुराइयों के विरुद्ध लड़े। अनेक अनुपयुक्त आर्थिक और सामाजिक विधानों की हम जाँच करें तो पता चलेगा कि वह हमारी सांस्कृतिक चेतना के क्षीण होने के कारण युगानुकूल परिवर्तन की कमी से बनी हुई रुढ़ियों और साथ संघर्ष की परिस्थिति से उत्पन्न समय विशेष की आवश्यकता की पूर्ति की माँग को पूरा करने के लिए अपनाए गए उपाय या उनका अनुकरण कर स्वीकार की गई व्यवस्थाएँ मात्र हैं।

समाजवाद भारतीयता के प्रतिकूल विदेशी विचार हैं। इस विरोध के बावजूद उनके प्रतिपादन में समाजवाद के प्रति एक भावनात्मक लगाव है। वे समाजवादी प्रवृत्ति, समाजवादी दृष्टिकोण तथा समाजवादी आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था, इस प्रकार समाजवाद की त्रि–आयामी व्याख्या करते हैं। समाजवादी प्रवृत्ति को वे आवश्यक बताते हैं, समाजवादी दृष्टि जो समतावादी है उसे वांछनीय मानते हैं; लेकिन 'समाजवादी राज्य–व्यवस्था' का प्रबल विरोध करते हैं। पूँजीवादी व समाजवादी अर्थव्यवस्था को मूलतः समान प्रवृत्ति की घोषित करते हैं। कार्ल मार्क्स की वैज्ञानिक समाजवाद की व्याख्या से वे असहमत हैं। मार्क्स के भावात्मक रूप से प्रशंसक है; लेकिन तर्क में उसका शिष्यत्व स्वीकार नहीं करते।

जीवन का एक आदर्श होना ज़रूरी है, इसी आदर्श को चरितार्थ करने के लिए संकल्प जागता है। यह आदर्श एकाएक निर्माण नहीं होता। समाज को ऊँचा उठाने के लिए भूतकाल में जो महान् प्रयत्न हैं, असीम त्याग, परिश्रम और उद्योग किए गए हैं, उनकी एक परंपरा बनती हैं। इस परंपरा को पुष्ट करने वाले महापुरुषों के जीवन उस आदर्श का दिग्दर्शन कराते हैं और तब राष्ट्र के लिए अंतिम आवश्यकता होती है उस व्यवस्था की, जिसके अंतर्गत इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए सफलतापूर्वक आगे बढ़ा जा सकता है।

उपाध्याय जी के विचारों में व्यक्ति और उसका विकास सदैव देखने को मिलता है। वह कहते हैं कि व्यक्ति के विकास और समाज की पूर्णता का यही समन्वित विचार भारतीय चिंतन की विश्व को देन है। व्यक्ति जन्म लेता है, समाज द्वारा उसे शिक्षित और संस्कारित किया जाता है, धीरे–धीरे व्यक्ति गुणवान बनता है। व्यक्ति अपने अंदर सुप्त श्रेष्ठताओं के विकास का अवसर पाता है, समाज उसकी देखभाल करता है। व्यक्ति को बुद्धिमान, धैर्यवान, पराक्रमी, शक्तिवान और धनवान बनाने का काम समाज ही करता है। इस प्रकार समाज से सबकुछ पाकर जब व्यक्ति सक्षम हो जाता है तो वह स्वयं कर्म करता है, किंतु जिस प्रकार वृक्ष स्वयं फल नहीं खाता, व्यक्ति भी अपने सतकर्म समाज को समर्पित करता है। वह अपने तक ही विचार नहीं करता सबका विचार करता है। यदि किसान है, तो खेत में इसलिए अन्य नहीं बोएगा कि उसकी अपनी ज़रूरत है, वरन् वह ऐसा अन्न पैदा करेगा, जिसकी समाज को आवश्यकता है। ठीक वैसे ही जैसे घर में माँ भोजन पकाते समय खुद का विचार नहीं करती, घर के सब लोगों की ज़रूरत का ध्यान रखकर भोजन पकाती है। इसी प्रकार व्यक्ति के कर्म इस दृष्टि से होते हैं कि समाज की आवश्यकता की पूर्ति हो। व्यक्ति अपने गुण और शक्ति का उपयोग समाज के लिए करता है।[6]

जब व्यक्ति समाज को अधिकाधिक समर्पित करता है, तब समाज भी व्यक्ति के योग–क्षेम की चिंता करता है। वैसे व्यक्ति अपने गुणों और शक्ति से समाज की दो–चार आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर पाता है, किंतु समाज उसके बदले में उसे कई चीज़ें लौटाता है। शिक्षा, वस्त्र, मकान, सुरक्षा ही नहीं तो सुख की अनेकानेक अनुभूतियों और दुःख में धैर्य भावना आदि कितनी ही बातें समाज से व्यक्ति को मिलती जाती हैं। इस प्रकार व्यक्ति और समाज में अविभाज्य संबंध का आदान–प्रदान चलता है। जो व्यक्ति कमा नहीं पाते और कमज़ोर रह जाते हैं, उसकी भी चिंता समाज ही करता है।

निष्कर्ष

सावरकर जी के सामाजिक विचार उग्र रूप लिये होते हैं जो विशुद्ध हिन्दुत्व की व्याख्या करते हुए मुस्लिमों के घोर विरोधी वाले हैं। वे कहते हैं कि सामाजिक क्रांति के लिए हमें पहले जन्म के आधार पर जाति निर्धारण करने वाली व्यवस्था पर हमला करना होगा और विभिन्न जातियों के बीच व्याप्त अंतर को खत्म करना होगा। वे मानते थे कि विवाह का आधार जाति नहीं होनी चाहिए, जीवनसाथी का चुनाव करते समय गुणों, सभ्यता, प्रेम और स्वास्थ्य को ही प्रेरक शक्ति माना जाना चाहिए।

वहीं पंडित दीनदयाल जी के विचारों का अध्ययन करें तो वे शाश्वत् विचारों वाले हैं। वे कहते हैं कि मौका पड़ने पर समाज आपका साथ देगा? नहीं। इसलिए कि हमारा समाज संगठित नहीं है, दुर्बल है। दीनदयाल जी शांत स्वभाव, चिंतक, समाजसेवा एवं संगठन के लिए अधिक जाने जाते थे। दीनदयाल उपाध्याय अपने साधनभूत संगठनों, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा जनसंघ, के एकनिष्ठ साधक थे। दीनदयाल जी संघ के प्रचारक होते हुए आजादी के आंदोलन के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करते थे।

तुलनात्मक रूप से यही कहा जा सकता है कि सावरकर जी एवं पं. दीनदयाल जी के स्वभाव भले ही विपरीत रहे हों परंतु समाज के प्रति उनका त्याग, समर्पण एवं बलिदान की भावना मानव के अस्तित्व के लिए ही सर्वोपरि थी। समाज में रहकर, समाज के प्रति जो अटूट श्रद्धा, समर्पण की भावना उनमें थी, वही भावना वह भारत के प्रत्येक मानव में देखना चाहते थे और चाहते थे कि मानव सामाजिक बेड़ियों को तोड़कर, पुरानी मान्यताओं को तोड़कर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करे। आप दोनों महान विभूतियों ने देशवासियों को अपने विचारों से देशप्रेम, अखंण्डता एवं परस्पर स्नेह, सौहार्द्र के लिए सदैव प्रेरित किया।

संदर्भ सूची

1. वीर सावरकर, हिन्दू पद–पादशाही, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, राजधानी ग्रंथाकार, दिल्ली, पृ. 142।
2. वही पृ. 101।
3. सावरकर समग्र, हिन्दुत्व, वॉल्यूम 6, वांङ्मय, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 20।
4. दीनयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय– (भाग एक), संपादक– डॉ. महेश चंद्र शर्मा, प्रकाशक–प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 25 सितम्बर 2016, पुनर्मुद्रण– जनवरी 2017 पृ. 125 से 127।
5. वही, पृ. 130।
6. पं. दीनदयाल उपाध्याय–विचार दर्शन, एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, पृ. 8।

****